# हमारे स्कूलों को क्या चाहिए: बच्चों को तोड़ना-जोड़ना सिखाएं

## शिक्षक दिवस से पहले यह जानने की कोशिश कि हम कैसे सीखते हैं और सीखना क्या चाहिए?

**अरविन्द गुप्ता**

**चेन्नई,** जहां मैं रहता हूं, के बेहतरीन स्कूलों में से एक ने माना कि वहां अमूमन ऊंची जाति और ऊंचे तबके के बच्चों को ही प्रवेश मिल पाता है. इस वजह से ये बच्चे उस महान विविधता से अछूते रह जाते हैं, जिसे हम भारत कहते हैं. वे कभी किसी मुसलमान बच्चे के बगल में नहीं बैठते और किसी दलित के साथ खाना नहीं खाते. यह एक संकीर्ण और विकृतअनुभव संसार है, जो वयस्क होने पर आदमी को कट्टर बना देता है. हमें अपने बच्चों के अनुभवों को व्यापक व समृद्ध बनाना चाहिए. शिक्षा के अधिकार क़ानून के तहत, कुल सीटों की एक निश्चित संख्या ग़रीब बच्चों को मिलनी चाहिए. लेकिन अमीर स्कूलों ने इस आरक्षण का भी तोड़ निकाल लिया है.

जापानी कलाकार तुत्सुको कुरोयानागी ने अपनी कालजयी पुस्तक तोत्तो चान (1981) में बताया है कि उनके प्रोग्रेसिव स्कूल की प्रिंसिपल सचेत ढंग से दिव्यांग बच्चों को प्रवेश दिलवाती थीं क्योंकि वे जानती थीं कि इससे बाकी बच्चों में संवेदनशीलता विकसित होगी. सफ़दरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली के सेंट मेरी स्कूल की स्वप्नदर्शी प्रिंसिपल ऐनी कोशी भी ऐसी एक पथप्रदर्शक हैं. उनके स्कूल के 20 प्रतिशत बच्चे दिव्यांग हैं- सुनने, चलने, दृष्टि में कमजोर या मंद बुद्धि. सामान्य बच्चे इन बच्चों की मदद करते हैं और दयालुता व समानुभूति का अपना पहला पाठ सीखते हैं.

दलित, मुसलमान और आदिवासी बच्चे स्कूल में ऊंची जाति के शिक्षकों द्वारा लगातार अपमानित किए जाते हैं. इटली के बार्बियाना स्कूल में पढ़ने वाले भूमिहीन मजदूरों के बच्चों ने उनका मशहूर 'एक शिक्षक के नाम पत्र' लिखा था, जिसकी शुरुआत इस वाक्य से होती है, "स्कूल ग़रीबों के खिलाफ़ लड़ी जा रही एक जंग है."

तमाम सर्वेक्षण सरकारी स्कूलों की असफलता की ओर इशारा करते हैं. ग्रामीण भारत में आठवीं कक्षा में पढ़ने वाले प्रत्येक चार बच्चों में एक, कक्षा 2 के स्तर का पाठ नहीं पढ़ पाता. आठवीं कक्षा में पढ़ने वाला हर दूसरा बच्चा घटाने की साधारण गणितीय क्रिया कर पाने में असमर्थ है. आईआईएम-अहमदाबाद के स्नातकों द्वारा शुरू की गई पहल एजुकेशनल इनिशिएटिव ने 2006 में शहरी भारत में पढ़ रहे 30,000 बच्चों पर एक अध्ययन किया. यह अध्ययन बताता है कि रट्टे की परिपाटी अब भी पूरी मज़बूती से कायम है.

1. पांच सेमी लम्बी एक पेन्सिल को एक स्केल के बराबर में रखा गया. इसके सिरे 1 सेमी और 6 सेमी के निशानों को छू रहे हैं. पांचवी कक्षा के मात्र 11 बच्चे पेन्सिल की सही लम्बाई बता पाते हैं.
2. एक आयताकार कागज़ के एक कोन पर 1 सेमी भुजा वाला एक वर्ग काटेंगे तो आयत के परिमाप में कितना अंतर आएगा.

   आयत का परिमाप 2 सेमी कम हो जाएगा.

   **पांचवीं कक्षा के केवल 23 प्रतिशत बच्चे ही सही जवाब दे पाए.**

1990 के दशक में उदारीकरण की शुरुआत के बाद भारत सरकार जानबूझकर सरकारी स्कूलों के बजट में कटौती कर रही है. उनका स्तर गिराने और उन्हें नाकाबिल बना डालने के बाद अब सरकार उन्हें पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप के नाम पर निजी खिलाड़ियों और धार्मिक संस्थाओं को सौंप रही है.

हमारे सरकारी स्कूलों की हालत इतनी बुरी क्यों है? उच्च और मध्य वर्ग स्पष्ट रूप से पूरी तरह इनसे पल्ला झाड़ चुका है, क्योंकि उन्होंने अपने बच्चों के लिए निजी अभिजात स्कूल खड़े कर लिए हैं. ग़रीब तबकों के पास अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में भेजने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है. चार साल पहले इलाहाबाद उच्च न्यायालय के जस्टिस सुधीर अग्रवाल ने सुझाव दिया था कि सभी सरकारी कर्मचारियों को अपने बच्चे सरकारी स्कूलों में भेजने चाहिए. ऐसा हो पाता तो उनमें ज़रूर सुधार आता!

बच्चों में सीखने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है. जॉन होल्ट की अंतिम पुस्तक 'लर्निंग ऑल द टाइम' का एक उप शीर्षक है- 'बच्चे बिना पढ़ाए कैसे सीखते हैं.' यह तो बड़ों का दंभ है कि हम उन्हें पढ़ाने पर आमादा रहते हैं.

बच्चों को उनके आज़ाद क्षणों में देखिये. वे हमेशा कुछ न कुछ तोड़ते-जोड़ते और खोजते नज़र आएंगे. वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में ठीक यही करते हैं. बच्चे स्वभाववश ऐसा करते हैं. लेकिन जब वे स्कूल पहुंचते हैं, उनकी कुदरती जिज्ञासु वृत्ति नष्ट हो जाती है. चालाक व चुस्त बच्चे अपने शिक्षकों और अभिभावकों को ख़ुश करने के लिए रट्टा मारना सीख जाते हैं और वास्तव में वे सीखने की प्रक्रिया को बहुत कम समझ पाते हैं.

किसी चीज़ को समझने के लिए बच्चों को अनुभव की ज़रूरत पड़ती है. वस्तुओं को देखना, छूना, सुनना, सजाना, अलग-अलग करना आदि अनुभवों को समृद्ध करने वाली क्रियाएं हैं. इसी तरह वास्तविक चीज़ों से प्रयोग करना भी ज़रूरी है. अनगिनत विज्ञान कार्यशालाओं में मैंने देखा है कि जो बच्चे परीक्षाओं में अच्छा नहीं कर पाते, वे बहुधा अपने हाथों से चीज़ें बनाने के मामले में बेहतर प्रदर्शन करते हैं.

1980 में फ़िनलैंड ने अपनी बेतरतीब शिक्षा व्यवस्था को दुरुस्त करने का निर्णय लिया. उसने प्राइवेट स्कूलों को बंद कर दिया और देश के सभी बच्चों- अमीर, ग़रीब या दिव्यांग- को एक जैसी उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा देने का फैसला लिया. सभी बच्चे अपने पड़ोस के स्कूल में पढ़ने लगे. फ़िनलैंड के लोग मानते हैं कि स्कूल ऐसी जगह हैं जहां बच्चे ख़ुश रहें और वह सब खोज सकें जो उन्हें अच्छा लगता हो. उन पर परीक्षाओं का वाहियात बोझ क्यों डाला जाय? वहां 16 वर्ष की आयु तक नहीं के बराबर परीक्षाएं होती हैं और स्कूलों व शिक्षकों को पूरी स्वायत्तता दी जाती है. (हमारे अपने स्कूल बोर्ड परीक्षाओं और नियंत्रणों के मुरीद हैं). फ़िनलैंड ने अपने शिक्षण बल को बेहतर किया, बच्चों के टेस्ट व परीक्षाओं को न्यूनतम रखा शिक्षकों को जवाबदेही की जगह जिम्मेदारी का बोध कराया. नतीजा: शैक्षिक क्षमताओं का आकलन करने वाले अंतरराष्ट्रीय टेस्ट- पीसा में पिछले एक दशक से फिनलैंड के बच्चे शीर्ष पर हैं.

फ़िनलैंड ने शिक्षकों की सामाजिक हैसियत को भी ऊंचा किया. वहां की माध्यमिक परीक्षा में शीर्ष पर रहने वाले 10 प्रतिशत बच्चे प्राइमरी स्कूल का शिक्षक बनने के लिए कठिन परिश्रम करते हैं. वहां यह परीक्षा पास करना यहां के आईआईटी-जेईई निकालने जैसा है. फ़िनलैंड में सबसे अच्छे विद्यार्थी शिक्षक बनना चाहते हैं.

हम चुनौतियों से भरे समय में रह रहे हैं. संवाद के लोकतांत्रिक स्पेस सिकुड़ रहे हैं. सरकार की नीतियों की हल्की-फुल्की आलोचना करने वाले को भी देश-विरोधी बताकर धमकाया जा रहा है. हाल ही में हरियाणा के एक स्कूल में बच्चों व शिक्षकों को कहा गया कि वे जम्मू-कश्मीर में धारा 370 को ख़त्म करने के फैसले की तारीफ़ करते हुए प्रधानमंत्री कार्यालय को पत्र लिखें. जब स्कूल राजनीतिक दबाव में इस तरह घुटने टेक लेंगे तो हमारे बच्चों का भविष्य उज्जवल नहीं कहा जा सकता. क्या ऐसे स्कूल तार्कितता और वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा दे सकते हैं?

हमारे नेता बड़े-बड़े दावे करते हैं और विज्ञान व टेक्नोलॉजी के मामले में अतीत को महिमामंडित करते रहते हैं. अक्सर सस्ती लोकप्रियता के लिए किये जाने वाले ऐसे दावे निहायत झूठे और अपुष्ट होते हैं. इनसे दुनिया भर में हमारा मज़ाक उड़ता है. करीब 2,500 वर्ष पहले महाज्ञानी बुद्ध ने कहा था:

सिर्फ इसलिए विश्वास मत कर लो कि ऐसा कहा गया है
या कि तुम्हारे शिक्षक ने कहा है
या कि तुम्हारे धर्मग्रन्थ में लिखा है
सच्चाई के सामने हर चीज़ की परख करो
और अगर आपको वह सच्ची लगे
और दूसरों का भला करने वाली हो
तो उसे अपना लो.

दुनिया में पुस्तकों के सबसे बड़े भण्डार (archive.org) में मुफ्त में डाउनलोड करने के लिए 2 करोड़ से भी ज्यादा किताबें रखी हुई हैं. एमआईटी, स्टेनफोर्ड और अन्य पर आला दर्जे की पाठ्यसामग्री मुफ्त इस्तेमाल के लिए ऑनलाइन उपलब्ध है. प्रेरणाविहीन स्कूलों को देखते हुए बच्चों के पास आज एक विकल्प है. वे इन्टरनेट में मौजूद इस खजाने पर जा सकते हैं और ख़ुद से सीख सकते हैं. इससे समय और पैसे दोनों की बचत होगी. मार्क ट्वेन ने एक सदी पहले यह बात कही थी, "स्कूलों को अपनी शिक्षा में दखल मत देने दो."